ॐ संकट मोचनाय नमः

चतुर्दशो अध्यायः

श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद

'त्रिगुण विभाग'

अध्याय

दोहा- अर्जुन के हर प्रश्न का, कृष्ण कर रहे मान।
विजय ध्वजा पर अमिय रस, पान करें हनुमान॥

पुनः कहा कौन्तेय से प्रभु ने पावन ज्ञान।
परम सिद्धि पा मुक्त हों मुनिजन जिसको जान॥

धर्म धारित ज्ञान आश्रित आ गये मम पास जो।
न तो फिर उत्पन्न हों वे, और न पावें नाश को।। 01

महा योनि बन स्वयं उत्पन्न करता प्राण हूँ।
और चेतन ब्रह्म मैं ही करता गर्भाधान हूँ।। 02

सबको धारण कर प्रकृति मेरी ही सबकी मात है।
बीज मेरा, ब्रह्म विग्रह ही सभी का तात है।। 03

सत्व, रज, तम के त्रिगुण से प्रकृति सबको बांधती।
पंचभूती देह में जीवात्मा को साधती।। 04

सत्व गुण इस देह में, उत्पन्न करता भव्यता।
ज्ञान का आलोक पाकर, जीव पाता दिव्यता।। 05

रजोगुण आसक्त हो, सर्वत्र करता कामना।
अस्तु फल के हेतु से, बंध जाता है जीवात्मा।। 06

तमो गुण से फैलता, सर्वत्र निद्रालस्य है।
हो प्रमादी देह में, यह ज्ञान करता नष्ट है।। 07

कर्म संजुत रजोगुण और सत्व सुख आविष्ट है।
और निद्राविष्ट तम से, ज्ञान होता नष्ट है।। 08

सत्वगुण बढ़ता अगर, रज, तम पर पूर्णाधिकार हो।
तम सतोगुण को दबाकर, रजोगुण साकार हो।। 09

यदि रजोगुण, सतोगुण में, तम की सीमा पार हो।
तो सत्व रज गुण को दबा, तम देह में सविकार हो।। 10

दोहा- यदि विवेक मय चेतना, हर इन्द्रिय की शक्ति।
पार्थ जान लो सत्व गुण में है मन की भक्ति।।

लोभ, लालच, कर्मफल से, स्वार्थ बुद्धि बद्ध हो।
विषय भोगी देह राजस धर्म में आबद्ध हो।। 11

किन्तु निद्रालस्य से, मन में सदा अवसाद हो।
तब तमोगुण का ही सारी देह पर साम्राज्य हो। 12

सत्व गुण में मृत्यु पा, स्वर्गादि का आनन्द हो।
रजो गुण आसक्त फिर से, देह पा उत्पन्न हो।। 13

पर तमोगुण में ही जीकर मृत्यु पाता जीव हो।
अति मलिन पशुयोनि से पा जन्म अति भयभीत हो।। 14

सतोगुण सुख ज्ञान और वैराग्य का भण्डार है।
दुःख रज से और तम, अज्ञान का अम्बार है।। 15

यह सभी गुण धर्म करते, स्वयं ही निर्वाह है।
और मेरा रूप इन सबसे परे, ये भाव है।। 16

बस शरीरी रूप में गुण धर्म करते विघ्न हैं।
जानकर यह ज्ञान पाता, जीव परमानन्द है।। 17

जन्म, यौवन, जरा, का उसको न कोई दुःख है।
इन सभी पर विजय पाकर, जीव यह उन्मुक्त है।। 18

दोहा- सारा जीवन गुणों के रहकर यों आधीन।
येन केन विधि जीव फिर, क्यों कर हो स्वाधीन।।

पाण्डु पुत्र इन गुणों में, जिसकी नहीं प्रवृत्ति।
राग, द्वेष से रहित हों, पाता जीव निवृत्ति।।

मुझमें एकी भाव हो, साक्षी है जो इस वृत्ति का।
और न विचलित कभी, अधिकारी है वह निर्वृत्ति का।। 19

लोष्ठवत मणि कांचन सुख दुःख से सम स्वस्थ हो।
प्रियाप्रिय सम तुल्य, निन्दा स्तुति में आश्वस्त हो।। 20

मित्र हो, बैरी हो, किंबा, मान हो, अपमान हो।
त्रिगुण से हो विरत कर्ता पन का ना अभिमान हो।। 21

यों सभी से विरत, बस मुझसे ही भक्ति योग हो।
फिर कहो अर्जुन न क्यों, उस जीव से संयोग हो।। 22

दोहा- एकं, नित्यं शाश्वतं, अविनाशी परब्रह्म।
सदा एक रस अमृत मय, मैं आनन्द अखण्ड।।

इति श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद
त्रिगुण विभाग योग चतुर्दश अध्याय समाप्त।